स्कूल का वातावरण: क्या इससे फर्क पड़ता है?

दो मित्रों में संवाद

शशिधर जगदीशन

दो दोस्त काफी समय बाद मिल रहे हैं। उनमें से एक शिक्षक है। वे बात करने लगते हैं और शिक्षा उनकी चर्चा का विषय बन जाता है।

दोस्तः तुम्हारा स्कूल सच में बहुत ही सुन्दर है और यहाँ पर बच्चे भी बहुत खुश और दोस्ताना प्रवृत्ति के दिखाई दे रहे हैं। मुझे मालूम है कि स्कूलों को बनाने और चलाने में बहुत ऊर्जा लगती है। मगर मुझे यह बताओ – क्या शिक्षा के लिए सचमुच कुछ विशेष हालात चाहिए होते हैं?

शिक्षकः मेरे खयाल से यहाँ विचार करने लायक दो सवाल हैं। शिक्षा का लक्ष्य क्या है और स्कूल का वातावरण बच्चों पर कैसे प्रभाव डालता है?

दोस्तः मगर एक मिनट। स्कूल का वातावरण तो कोई बहुत महत्त्वपूर्ण बात नहीं जान पड़ती। हम जानते हैं कि बच्चे सभी तरह के वातावरण में सीख सकते हैं : मसलन, युद्ध–छिड़े इलाकों में, जबरदस्त गरीबी के बीच, विद्वेषी और घरेलू हिंसा के माहौल में भी। तो फिर मददगार, क्षमतावर्द्धक स्थानों को लेकर इतना अधिक हल्ला–गुल्ला और उत्तेजना क्यों? क्या इससे सच में कोई फर्क पड़ता है?

शिक्षकः क्या तुम चाहोगे कि तुम्हारा बच्चा ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में बड़ा हो?

दोस्तः अरे नहीं! लेकिन हम भी तो परम्परागत शिक्षा प्राप्त करते हुए ही यहाँ तक पहुँचे हैं, और मेरा ख्याल है कि हम अच्छी अवस्था में ही हैं।

शिक्षकः अपनी तो तुम बताओगे, मगर मैं तो अच्छा महसूस नहीं करता !

दोस्तः क्या मतलब? अरे भई हम समाज के कामयाब सदस्य हैं, अच्छे माने जाते हैं।

शिक्षकः हाँ, हम कुछ हद तक कामयाब और उपयोगी हैं। मगर सम्पूर्ण समाज और व्यक्ति–विशेष की ओर



देखें तो मुझे लगता है कि न तो समाज स्वस्थ अवस्था में है और न ही व्यक्ति खुश हैं।

दोस्तः समाज की तो कई समस्याएँ हैं – मगर हम व्यक्तिगत स्तर पर इन्हें कैसे हल कर सकते हैं? और इसका शिक्षा से क्या सम्बन्ध है?

शिक्षकः इससे पहले कि हम समाज को ठीक करने की कोशिश करें, क्यों न पहले यह देखें कि वह क्या है जो समाज को ऐसा बनाता है? तब शायद हम शिक्षा और समाज के सम्बन्ध को समझ पाएँगे – कम से कम उस तरह, जैसा वह मेरी दृष्टि में है।

दोस्तः अरे, यह सवाल तो समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों और दार्शनिकों के लिए है न कि तुम्हारे और मेरे लिए। मगर मैं अन्दाजा लगाऊँ तो कहूँगा कि व्यवस्था बहुत भ्रष्ट है, धनवानों और राजनीतिज्ञों के बीच साँठ–गाँठ है, शासन व्यवस्था बहुत ही

घिसी–पिटी है और इसके अलावा हजारों अन्य कारक हैं जिनके बारे में हम शायद जानते भी नहीं या जिन्हें समझ पाना ही हमारे लिए सम्भव नहीं है। मुझे बताया गया है कि व्यक्ति को उसके समाज से अलग करना असम्भव है।

शिक्षकः ठीक है, मैं मानता हूँ कि यह एक बहुत ही जटिल मुद्दा है और मैं तो समाजशास्त्र या अर्थशास्त्र के बारे में बात करने की सामर्थ्य भी नहीं रखता। लेकिन क्यों न हम मानव तत्व पर ध्यान केन्द्रित करें? हम भ्रष्ट, संवेदनहीन और शोषक क्यों हैं ?

दोस्तः शायद यह इन्सान की फितरत का अभिन्न अंग ही हो?

शिक्षकः इन्सानी फितरत से तुम्हारा क्या अर्थ है?

दोस्तः मनुष्य जानवर जगत का हिस्सा है और वहाँ हम स्वयं को, अपने बच्चों को, अपने इलाके को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति पाते हैं। आदिकाल के कबीलों में भी हिंसा और दूसरों पर प्रभुत्व की प्रवृत्ति पाई जाती है। तो यह सब हमारी फितरत का भी हिस्सा है.....

शिक्षकः लेकिन इन्सान दयावान, निःस्वार्थ और करुणाशील भी होते हैं। और मैंने ये गुण जानवरों में होने की बात भी सुनी है। कुछ भी हो, क्या तुम इस बात से सहमत नहीं हो कि इन्सान में सीखने की कमाल की सामर्थ्य होती है? और हमें पूछना होगा कि क्या शिक्षा का प्रभाव व्यक्ति और समाज पर नहीं पड़ता?

दोस्तः जाहिर है, वह तो पड़ता ही है! शिक्षा से अपेक्षित है कि वह बच्चों को अपनी रोटी–रोजी कमाने में मददगार हो और इस अर्थ में वह व्यक्ति और समाज दोनों पर प्रभाव डालती है।

शिक्षकः बिल्कुल, लेकिन क्या मैं तुम्हारे साथ शिक्षा के बारे में कृष्णमूर्ति के विचार साझा कर सकता हूँ? इन दिनों मैं उनकी पुस्तकें पढ़ता रहा हूँ।[1]

"'स्कूल' शब्द का अर्थ है फुरसत, सीखने की फुरसत; और एक ऐसा स्थान जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी फल–फूल सकें, जहाँ भविष्य की पीढ़ी को तैयार किया जाए – यही स्कूलों का उद्देश्य है, न कि इन्सानों को यांत्रिक, प्रौद्योगिक औजारों के रूप में नौकरियों और व्यवसायों आदि के लिए तैयार करना। यह आवश्यक है, मगर इतना ही आवश्यक है कि वे बिना भय, बिना किसी चकराहट और अनिश्चय के, ईमानदार मनुष्यों के रूप में फलें–फूलें और एक ऐसा अच्छा इन्सान होना सम्भव हो पाए – मैं शब्द 'अच्छा' को उसके सही अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ न कि सामान्य अर्थ में; 'अच्छा', एक सम्पूर्ण मानव के अर्थ में, जो खण्डित और टुकड़ा–टुकड़ा नहीं और न ही अनिश्चय और भ्रम में है।"

"निश्चित ही, स्कूल एक ऐसा स्थान है जहाँ हम जीवन की समग्रता, उसकी सम्पूर्णता के बारे में सीखते हैं..... एक ऐसा स्थान जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों न केवल बाह्य संसार और ज्ञान के संसार को बल्कि अपनी सोच को, अपने व्यवहार को भी जाँचते–परखते हैं। यहीं से वे अपने ढालने, अपने दशानुकूलन को खोज पाना–जानना शुरू करते हैं और यह भी कि किस तरह वह उनकी सोच को विकृत करता है और यही अनुकलन वह स्वत्व है जिसे इतना अधिक और निर्मम महत्त्व दिया जाता है। इस बात के बारे में जागरूकता के साथ ही दशानुकूलन और दुख से आजादी की शुरुआत होती है। और ऐसी आजादी में ही सच्चा सीखना हो सकता है।"

दोस्तः यह तो कुछ डर सा पैदा करने वाली और चुनौती भरी बात लगती है। क्या शिक्षा सच में ऐसी बड़ी चुनौती का मुकाबला कर सकती है? आप कृष्णमूर्ति के साथ शिक्षा के उद्देश्य पर सहमत हों तो कैसा वातावरण बना रहे होंगे?

शिक्षकः यह डराने वाली बात लग सकती है लेकिन जब मैं संसार के हालात देखता हूँ, तो मुझे शिक्षा देने का कोई अन्य तरीका दिखाई नहीं देता! चलो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि मेरे और मेरे साथियों की निगाह में ऐसी शिक्षा के लिए क्या होना जरूरी है। सर्वप्रथम, शिक्षक और विद्यार्थी का रिश्ता

[1] Beginnings of Learning and
The Whole Movement Of Life Is Learning,
by J. Krishnamurti

परस्पर विश्वास और स्नेह पर आधारित होना चाहिए, भय और सत्ता पर नहीं। यदि विद्यार्थी और शिक्षक को मिलकर मानव की आन्तरिक चेतना की प्रकृति की पड़ताल करना है तो एक–दूसरे से भय और अविश्वास के माहौल में यह नहीं हो सकता।

दोस्तः तुम ठीक कह रहे हो। मुझे याद है कि हम अपने शिक्षकों से कितना डरते थे। हम कभी भी उनसे सम्बद्ध महसूस नहीं करते थे सिवाय उन कुछ शिक्षकों के साथ जो दोस्त और हमदर्द लगते थे। लेकिन एक सवाल है। बेहतरीन रिश्ते में भी, बड़ा होने के नाते, और बच्चे के प्रति जिम्मेवार होने के नाते कभी–कभार उन्हें डाँटना नहीं पड़ता? क्या तुम्हें कुछ नियम निर्धारित नहीं करने पड़ते और उनके द्वारा एक–दूसरे को हानि पहुँचाने पर ऊँची आवाज में नहीं बोलना पड़ता? यह न कहना कि वे तुमसे डरते नहीं हैं!

शिक्षकः यह तुमने बहुत अच्छा मुद्दा उठाया। हम यह दावा नहीं कर रहे कि हमने हर प्रकार का भय समाप्त कर दिया है। लेकिन भय को रीतिपूर्वक, तरीके से इस्तेमाल किया जाता है तो बात दूसरी ही तरह की हो जाती है : तब भी, जब शिक्षक और विद्यार्थी के बीच का आदान–प्रदान मुख्य तौर से भय के आधार पर ही हो। कुछ साल पहले कुछ शिक्षकों[2] ने भारत में कई स्कूलों में सर्वेक्षण किया था कि बच्चों को किन बातों से भय लगता है। मुझे उनकी कुछ प्रतिक्रियाएँ, उनके कुछ डर याद हैं : 'गृह कार्य, परीक्षाएँ और खतरनाक जानवर', 'अन्धेरा, गणित के शिक्षक और स्विमिंग पूल के गहरे हिस्से', 'प्राकृतिक आपदाएँ, पिता जी, शिक्षक और परीक्षाएँ' तथा 'ईश्वर, साँप, कुछ शिक्षक'।



दोस्तः मैं तुम्हारी यह बात समझ गया हूँ कि परम्परागत शिक्षा में मुख्य तौर पर भय से ही बच्चों को कुछ सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है। सोचें तो स्कूलों में आमतौर पर प्रतिस्पर्धा, तुलना, ईनाम और सजा का बहुत प्रयोग किया जाता है – क्या आपके ख्याल से ये सब सीखने के लिए हानिकारक हैं?

शिक्षकः हाँ! इनसे सीखना गम्भीर तौर पर बाधित होता है, बल्कि इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस सबकी वजह से एक क्रूर समाज बनता है। मजेदार बात है कि वैज्ञानिक शोध ने भी बेशक यह दर्शाया है कि भय और डर अकादमिक शिक्षा को प्रभावित करता है। प्रतिस्पर्द्धा, ईनाम और दण्ड कुछ समय के लिए तो लाभ दे सकते हैं लेकिन लम्बे दौर में संवेदनारहित तथा असुरक्षित इन्सान ही पैदा करते हैं।

दोस्तः मैं अब उस सम्बन्ध को कुछ–कुछ देख पा रहा हूँ जो आप शिक्षा और समाज के बीच स्थापित कर रहे हैं लेकिन अब तक हम इसकी ओर केवल परम्परागत शिक्षा के नकारात्मक प्रभावों की दृष्टि से जा पा रहे हैं। आप मुझे अपने दृष्टिकोण के कुछ ठोस नतीजों के बारे में बताइए।

शिक्षकः पहले तो मैं यह बता दूँ कि मेरे विचार से जितना अधिक आप शिक्षा के क्षेत्र में काम करते हैं, उतना ही कम शायद आप सैद्धान्तिकता की कोई बात कर सकते हैं या नतीजों की गारण्टी दे सकते हैं ! हाँ, बच्चों के साथ पिछले 23 सालों में किए गए काम के आधार पर कुछ बातें हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं।

[2] See Journal of the Krishnamurti Schools, Vol 15, 2011

दोस्तः उदाहरण के लिए?

शिक्षकः परीक्षा लिए बिना तथा अन्य तिकड़मों का सहारा लिए बिना पढ़ाना सम्भव है। बल्कि पहले ही दिन से विद्यार्थियों को सोचने और सवाल करने के लिए प्रेरित किया जाता है, और सुनिश्चित करने की कोशिश रहती है कि वे अवधारणाओं को समझें; इसीलिए, हमें लगता है कि उनकी पकड़ गहरी है और नई सामग्री को सीखने–समझने की उनकी सामर्थ्य बढ़ती है। और यह बात सीखने के आम–साधारण अर्थ से आगे तक जाती है। जैसे ही हम समझने को विद्यार्थियों के साथ अपने सम्बन्ध के केन्द्र में ले आते हैं, कई सूक्ष्म लेकिन महत्त्वपूर्ण बातें होने लगती हैं और यह हमारे दिन–प्रतिदिन की क्रिया–प्रतिक्रिया में भी होने लगता है। जो कुछ भी होता है, उसे हम समझने के दृष्टिकोण से सम्बोधित करने लगते हैं – बच्चे द्वारा किसी नियम को तोड़े जाने पर भी......

दोस्तः क्या आपको अब भी प्रतिदिन प्रोत्साहन और प्रतिरोध की चुनौती का सामना नहीं करना पड़ता? इसके अलावा, आपका माहौल चाहे इस बात को प्रेरित न करे, बच्चे तो हमेशा एक–दूसरे के साथ तुलना करेंगे ही। इन अत्यन्त अनुकूलित शक्तियों से आप कैसे सम्बोधित होते हैं?

शिक्षकः तुमने हथौड़ा सही जगह पर मारा है! जैसा मैंने कहा, शिक्षा के सीमित लक्ष्यों तक पहुँचना, यानी दक्षताओं और अवधारणाओं पर महारत हासिल कर पाना, सम्भव है। और यह स्कूलों में आमतौर पर शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के बिना भी सम्भव है। लेकिन जैसे ही आप दृश्यपटल को फैलाते हैं, आपके सामने मानव–अनुकूलन की विशाल चुनौती आ खड़ी होती है। मेरा अर्थ है कि एक–दूसरे के साथ सम्बन्ध बनाने में हमारा सामना अपने पूर्वाग्रहों, डरों और चिन्ताओं, आशाओं और इच्छाओं, खुशियों और दुखों से होगा, हमें तुलना की तथा अपने सोचने और करने के विशेष तरीकों के बारे में सोचने की आवश्यकता महसूस होगी।

दोस्तः तो आप इस चुनौती का सामना कैसे करते हैं?

शिक्षकः आशा है कि नम्रता से कर पाते हैं ! हम ऐसा वातावरण बनाने की आशा करते हैं जहाँ हम स्वयं के अनुकूलन और ढलने की प्रक्रिया, पहचान और विभाजन, विश्वास और असुरक्षा की ताकतों के प्रति जागरूक हो पाएँ और इस बारे में भी कि किस प्रकार ये ताकतें वृहद समाज में सक्रिय होती हैं। मैं फिर कहूँगा, कि स्वयं की समझ से ही कोई बदलाव आ सकता है।

दोस्तः और अगर विद्यार्थी ही खुद के बारे में कुछ सीखने को तैयार न हों?

शिक्षकः यह तो तय है कि उन पर कुछ थोपा नहीं जा सकता। हम उन्हें खुद के बारे में सीखने को बस आमन्त्रित ही कर सकते हैं। इसके लिए स्कूल की व्यवस्था को ऐसा बनाया जाता है कि सोच–विचार और प्रश्न करने की प्रक्रिया चल सके। हम सीखने वालों का एक ऐसा समुदाय हैं जिसमें सहयोग और साथ–साथ काम करने पर बहुत बल दिया जाता है। यह स्वाभाविक तौर पर हमें स्वयं को 'सम्बन्ध के आईने' में देखने पर मजबूर करता है। हम यह भी सीखते हैं कि किस प्रकार संसार भर में लोग अलग–अलग हालात में जीवन का सामना करते हैं। हम बहुत–सा समय प्रकृति के समीप भी बिताते हैं और हमने दिन में शान्ति से सोच–विचार के लिए भी जगह निकाली है। यह आधे घण्टे का 'शान्त समय' प्रतिदिन तलाशना विद्यार्थियों के लिए सबसे कठिन बातों में से एक है। और यह तथ्य अपने आपमें बहुत कुछ बताता है। लगता है कि जैसे ही हम किसी कार्य विशेष या मन बहलावे में उलझे हुए नहीं होते, हम स्वयं में एक बेचैनी के प्रति सचेत हो जाते हैं।

दोस्तः लेकिन सम्भव है कि विद्यार्थी इन अनुभवों को बहुत ही अलग तरीके से जान–समझ रहे हों। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि वे आपके 'शान्त समय' की व्याख्या योजना बनाने या दिन में सपने बुनने के लिए निश्चित समय के रूप में कर रहे हों। आप यह कैसे सुनिश्चित करते हैं कि वे सच में उन प्रश्नों की ही जाँच–पड़ताल करें जो आपके स्कूल को जीवन्त बनाते हों?

शिक्षकः तुममें सचमुच मुश्किल प्रश्न करने का हुनर है ! हाँ, हममें से प्रत्येक व्यक्ति बातों को अपने–अपने तरीके से व्याख्यायित करेगा। हम अपना ध्यान और ऊर्जा अपने विद्यार्थियों के साथ बात करने पर लगाते हैं। उदाहरण के लिए, सीनियर विद्यार्थी एक सप्ताह में औसतन 3 घण्टे तथाकथित संवाद–सत्रों में गुजारते हैं। वे वयस्कों के साथ अनौपचारिक बातचीत भी कर सकते हैं। विषय स्कूल के नियमों से लेकर अपने आपसी रिश्तों को समझने और संसार में उनके स्थान तक के हो सकते हैं। इस सबमें हम यह देखने की आशा करते हैं कि क्या हम मिलकर विचार और भावना की उन क्रियाओं की ओर सच में ध्यान दे सकते हैं जो पल–प्रतिपल चल रही होती हैं? यह सच में बहुत मेहनत माँगता है और मेरा विश्वास करें, हम अभी इस यात्रा की शुरुआत में ही हैं।

दोस्तः तो आप शायद कहना चाहते हैं कि आप ऐसे इन्सानों का पोषण करने की आशा करते हैं जो दयालु हों और उन सब बाधाओं से आजाद, जिन्हें हम बिना सवाल किए विरासत में ले लेते हैं (हालाँकि इस की कोई गारण्टी नहीं है!).......



शशिधर जगदीशन ने गणित विषय में Syracuse University से 1994 में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। वे पिछले 27 वर्षों से शिक्षक हैं। उन्हें बेंगलूरु के सेण्टर फॉर लर्निंग में सीनियर स्कूल के लिए कार्यक्रम विकसित करते हुए युवाओं के साथ संवाद करना और काम करना अच्छा लगता है। उनसे jshashidhar@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन

